शहर में कुत्तों का खौफ़, मेनका कहे प्रशासन रहे बेखौफ़

फ़रीदाबाद (म.मो.) शहर में हज़ारों लोग कुत्ता-काटे के शिकार हो रहे हैं। उपलब्ध पुख्ता जानकारी के अनुसार स्थानीय ई एस आई डिस्पेंसरियों व अस्पतालों से इस वर्ष 15 दिसम्बर तक 8400 लोग़ों ने कुत्ता-काटे के टीके लगवाये जबकि बादशाहखान अस्पताल से 9763 लोग़ों ने ये टीके लगवाये। विदित है कि इन सरकारी अस्पतालों में केवल वे ही लोग जाते हैं जो निजी अस्पतालों का खर्च वहन नहीं कर सकते। इन निजी अस्पतालों के आंकड़े भी यदि एकत्र किये जायें तो तस्वीर और भी गंभीर बनती नज़र आयेगी।

किसी भी शहर में आवारा कुत्तों को मारने व नियन्त्रित करने का दायित्व नगरपालिकाओं अथवा स्थानीय शहरी निकायों पर ही रहा है। कुत्ते द्वारा काट लेने से रैबीज़ अथवा हाइड्रोफ़ोबिया नामक बिमारी से ग्रस्त होने का पूरा खतरा रहता है और एक बार इस बीमारी के हो जाने पर मरीज़ का बचना लगभग असंभव सा ही होता है। इस बिमारी से बचने के लिये कुत्ता काटने के 10-12 घंटे के भीतर एंटीरैबीज़ टीका लगवाना अति आवश्यक होता है।पहले यह टीका केवल सरकारी अस्पतालों में ही लगता था, बिल्कुल मुफ़्त। एक बार कुत्ता काटे के लिये 14 टीके लगवाने पड़ते थे और वे भी पेट में जो कि अत्यन्त पीड़ादायक होते थे। टीका लगाने की नौबत ही न आये और आये भी तो कम से कम आये, इसके लिये सरकार का पूरा ध्यान आवारा कुत्तों को नियन्त्रित करने व मारने पर रहता था। इसके लिये नगर निकाय अपने विशेष दस्तों के द्वारा बाकायदा कुत्ते-मार अभियान चलाया करते थे। इसके चलते कुत्ता काटने के मामले बहुत कम आया करते थे।

अब नगर निकायों ने यह काम बिल्कुल बंद कर दिया है। करीब 20 वर्ष पहले तो हरामखोरी के चलते यह काम बन्द कर दिया गया था, परन्तु अब बाकायदा मेनका गांधी के आदेशों का हवाला देते हैं। लेकिन यह बताने को कोई भी अधिकारी तैयार नहीं है कि मेनका को इस तरह के आदेश जारी करने का अधिकार किसने दिया? जबकि सरकार की ओर से इस तरह का कोई नोटिफ़िकेशन जारी नहीं हुआ है।

ई एस आई अस्पतालों में लगने वाले टीकों का खर्च ई एस आई निगम वहन करती है जबकि बादशाहखान जैसे अन्य सरकारी अस्पतालों में खर्च पीड़ित को ही वहन करना पड़ता है। एक बार कुत्ता-काटे के लिये 4 से 5 टीके लगवाने होते हैं और प्रत्येक टीके का खर्च 100 रुपया लगता है। यानी बैठे-बिठाय 400 से 500 रुपया का खर्च और जो दिहाड़ी टूटती है वह अलग से। कई बार ऐसा भी होता है जब इन सरकारी अस्पतालों में टीके का स्टॉक नहीं रहता तो बाज़ार से जो टीके लगवाने पड़ते हैं वे 3 से 4 गुणा तक महंगे पड़ते हैं।

स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि मेनका गांधी का यह कुत्ता-प्रेम आम आदमी को कितना भारी पड़ रहा है। इतना ही नहीं दिखावे के तौर पर मेनका गांधी से जुड़ी अनेको एन जी ओ (गैर सरकारी संगठन) कुत्तों की नसबंदी व बीमार कुत्तों के इलाज के पाखंड पर सरकारी व गैरसरकारी अनुदान वसूल रही हैं। जाहिर है इस तरह के पाखंडों से कुत्तों पर कोई नियन्त्रण नहीं लग पाता, इसलिये आवारा कुत्तों की संख्या दिन दूणी-रात चौगुणी बढ रही है। कोढ में खाज की तरह अब बन्दरों की संख्या भी शहर में बढने लगी है। इनके द्वारा काटने के भी मामले सामने आने लगे हैं।

मेनका गांधी के कुत्ता-प्रेम से किसी को कोई लाभ हो न हो पर उन दवा कम्पनियों के ज़रूर वारे-न्यारे हो रहे हैं जो एंटी रैबीज़ टीके बनाती हैं। इन टीकों की बिक्री बड़ी तेज़ी से बढ रही है। इसे देखते हुए कहा जा सकता है कि मेनका के इस शौक से आम जनता की लुटाई और दवा कम्पनियों की कमाई। ऐसे में मेनका की इन दवा कम्पनियों से सांठ-गांठ की संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

आदमखोर बनते मेनका के 'शेर'

दिनांक 10 दिसम्बर को बी.के. अस्पताल से एक कुत्ता मृत शिशु को मुंह में दबोच कर भाग निकला। लोग़ों ने भाग-दौड़ कर मृत शिशु को उसके मुंह से छुड़ाया। यह तो केवल इत्तफ़ाक ही था कि शिशु मृत था, वरना ज़िंदा भी होता तो कुत्ते को क्या फ़र्क पड़ना था; और यदि छुड़ाने वाले लोग न होते तो वह कुत्ते का निवाला बन ही जाना था।

इस तरह की यह न तो पहली घटना है न आखरी। ये घटनायें अक्सर देखने-सुनने में आती रहती हैं। गत सप्ताह दिल्ली में तो एक बच्चे को कुत्ते ने पूरा ही खा डाला था।

लेकिन इन सबसे मेनका एवं पूरे शासक वर्ग को क्या फ़र्क पड़ता है, मरते तो आम जनता के बच्चे हैं। उनके बच्चे तो कुत्तों से खेलते हैं।

मेनका का यह कुत्ता-प्रेम पूर्वोत्तर के राज्यों में क्यों नहीं चलता? ज़रा वहां भी तो इसे चला कर दिखायें। उन राज्यों में ढूंढे से भी कोई कुत्ता दिखाई नहीं देता। कारण यह है कि कुत्ता इनका प्रिय भोजन है, इसे देखते ही इनके मुंह में पानी आ जाता है। पिछले दिनों हथीन में जब क़र्फ़्यू आदि लगे थे तो स्थानीय पुलिस की सहायता के लिये जो अर्धसैनिक बल बुलाया गया था वह सारा इन्हीं राज्यों से था; इसके परिणाम स्वरूप हथीन में कुत्ता एक भी नहीं बचा। और मेनका ने चूं तक नहीं की।

एन एच-3 अस्पताल उस लड़की की तरह जिसका न मायका न ससुराल

अस्पताल के बाहर चाय की दुकान पर बैठे कुछ लोग, शायद बीमाकृत मज़दूर ही होंगे, अस्पताल की दुर्दशा और अपनी बेबसी का रोना रो रहे थे। उनकी बातचीत सुनने के लिये यह संवाददाता भी थोड़ा खिसक कर उनके नज़दीक बैठ कर चाय पीने लगा।

वार्तालाप के दौरान एक ने बताया कि इस अस्पताल की हालत उस लड़की जैसी है जिसकी परवाह न तो कभी मायके वालों ने की और न ही ससुराल वालों ने। इसका मायका हुआ हरियाणा सरकार का ई एस आई स्वास्थ्य सेवा विभाग जिसने इसे 1968 में जन्म दिया, पाला पोसा। सन् 1976 में इसका विस्तार करके इसको और बड़ा किया। वर्ष 2000 आते-आते हरियाणा सरकार ने इसकी दुर्गति करनी शुरू कर दी। इसकी दुर्दशा पर तरस खाकर ई एस आई निगम ने इसे ब्याह कर अपने घर ले जाने की सोची। सन् 2008 में इस पर चर्चा चलाई। वर्ष 2009 में रिश्ता पक्का करके मेडिकल कॉलेज बनाने का निर्णय करके बाकायदा सगाई की रस्म अदा करी। वर्ष 2011 में बाकायदा लग्न पत्री भेज कर इस अस्पताल का कब्ज़ा मांगा। काफ़ी तमाशेबाज़ी व नाज़ोनखरों के बाद सितम्बर 2013 में विवाह की रस्म सम्पन्न हुई। कब्ज़ा देने यानी कन्यादान की रस्म बड़ी धूमधाम से, पूरा जलसा करके अदा की, तत्कालीन श्रम मन्त्री (हरियाणा सरकार) शिवचरण शर्मा ने।

उधर हरियाणा सरकार ने 2008 में रिश्ते की बात चलते ही यह घोषित कर दिया कि यह अस्पताल तो अब पराया धन है जिसे एक दिन तो जाना ही है। उस अभागी लड़की जिसकी ऐसी स्थिति में मां-बाप उस पर ध्यान देना छोड़ देते हैं, न कोई कपड़ा-लत्ता दिलाते हैं न उसकी सेहत का ध्यान रखते हैं। हरियाणा सरकार ने भी इस अस्पताल से अपना हाथ पूरी तरह खींच लिया था। न कोई स्टाफ़ लगाया, न कोई उपकरण लगाया और न किसी चीज़ की मुरम्मत आदि कराई।

सितम्बर 2013 में ससुराल यानी ई एस आई निगम के यहां पहुंचने पर इसकी हालत और भी खराब हो गयी। जो कपड़े-लत्ते यह लड़की साथ लाई थी उनमें से भी कई बाहर फ़ेंक दिये, 36 कर्मचारियों को काम से निकालकर। दवाओं आदि के भंडार जो साथ आये थे वे समाप्त हो गये। लड़की भूखों मरने लगी, यानी अस्पताल पूरी तरह से उजाड़ दिया गया। मरीज़ों ने आना बंद कर दिया। ठीक एक साल बाद ससुराल रूपी ई एस आई निगम ने हरियाणा सरकार रूपी मायके को बाकायदा चिट्ठी लिख कर कहा कि अपनी इस लड़की को वापस ले जाओ, यह हमारे बस की नहीं।

पर्यावरण बचाने के नाम पर ग्रीन ट्रिब्यूनल की भी दुकानदारी

जस्टिस स्वतंत्र कुमार के नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एन जी टी) ने हाल ही में 15 साल पुरानी गाड़ियों को दिल्ली की सड़कों से हटाने का तुग़लकी फ़रमान जारी किया है। इन गाड़ियों से वायु प्रदूषण अधिक होना बताया गया है। प्रदूषण एवं पर्यावरण के नाम पर देश भर में चल रही दुकानदारी का यह एक नया आयाम है।

कुछ वर्ष पहले सुप्रीम कोर्ट ने भी ऐसा ही एक फ़र्मान जारी किया था, लेकिन उन्हें शीघ्र ही सद्बुद्धि आ गयी और उन्होंने अपने फ़र्मान में संशोधन करके इन पुरानी गाड़ियों की फ़िटनेस जांच के बाद उचित पाये जाने पर चलते रहने की इजाजत दे दी थी। इससे शायद उन कार निर्माताओं को भारी झटका लगा होगा जो अपनी कार बिक्री बढने की आस लगाये बैठे थे। इससे अकेले दिल्ली में 25 लाख पुरानी कारें सड़क से हटने वाली थीं, जाहिर है उनकी जगह (सारी नहीं तो आधी सही) नई कारों को लेनी थी।

इस बात की क्या गारंटी हो सकती है कि एकदम नया वाहन वायु प्रदूषण नहीं कर रहा और पुराना कर रहा है। यह सब निर्भर करता है कि वाहन का रख-रखाव कैसा है। उचित रख-रखाव के अभाव में नया वाहन प्रदूषण फ़ैला सकता है और उचित रख-रखाव से पुराना से पुराना वाहन भी प्रदूषण नहीं फ़ैलाता। इस तरह से वाहनों की उम्र तय करने की अपेक्षा उनकी प्रदूषण जांच की जानी चाहिये और जांच में दोषी पाये जाने वाले वाहनों को ज़ब्त कर लिया जाना चाहिये।

हाल फ़िलहाल प्रदूषण जांच के नाम पर जो हो रहा है वह भी केवल दुकानदारी के अलावा कुछ नहीं है। कुछ लोग 'सेवा-पानी' के बल पर प्रदूषरण जांच का अधिकार प्राप्त करके पर्ची काटने बैठ जाते हैं। कोई यह देखने वाला नहीं कि उनकी जांच करने वाली मशीन की अपनी हालत क्या है। इन दुकानदारों की नियमित दुकानदारी चलवाने की अपेक्षा सरकार को स्वयं सड़कों पर चलते वाहनों की जांच करनी चाहिये और दोषी पाये जाने पर कड़ी सज़ा का प्रावधान होना चाहिये। पर जहां खुद एन जी टी ही दुकानदारी करने में जुटा हो वहां और किसी को कोई कैसे रोकेगा?

तमाम राज्यों के प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड तो पहले से ही प्रदूषण के नाम पर दुकानदारी कर ही रहे हैं। बोर्ड का चेयरमैन बनने के लिये करोड़ों की बोली लगती है। इसके बाद ज़िलों में तैनात होने वाले तमाम अधिकारी नीचे से उगाही करके धुर ऊपर तक हिस्सा-पत्ति पहुंचाते हैं। किसी भी अधिकारी को प्रदूषण नियन्त्रण से कुछ लेना-देना नहीं होता। हां, यदि कोई अधिकारी वास्तविक नियन्त्रण की बात करने लगे तो वह ऊपर बैठे आकाओं को अखरने लगता है।

दिल्ली में जहां तक वायु प्रदूषण का सवाल है उसके लिये सरकार की जनविरोधी नीतियां ज़िम्मेदार हैं। जो के एम पी (कुंडली-मानेसर-पलवल) मार्ग आज से 20 साल पहले बनकर चालू हो जाना चाहिये था वह गत 15 वर्षों से अभी 'बन' ही रहा है और अगले 3 साल तक भी उसके चालू हो पाने के आसार नहीं दिखते। इसी तरह पूर्वी बाइपास मार्ग (गाज़ियाबाद-नौयडा-ज़ेवर पलवल) का तो अभी तक काम ही शुरू नहीं हुआ। विदित है कि हज़ारों वाहन जिन्हें दिल्ली में घुसने की कतई कोई जरूरत नहीं होती, कोई अन्य वैकल्पिक रास्ता न होने की वजह से दिल्ली के भीतर से गुजरते हैं, इससे न केवल भारी प्रदूषण पैदा होता है बल्कि वाहनों का समय व तेल भी ज़्यादा खपता है और जो जाम लगते हैं वे अलग से।

अधिकतर लोग आवागमन के लिये मज़बूरी में अपना वाहन इस्तेमाल करते हैं। यदि सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था चुस्त-दुरुस्त एवं भरोसेमंद हो तो कम से कम 50 प्रतिशत निजी वाहन सड़कों से स्वत: हट सकते हैं। दिल्ली में से आवादी एवं वाहनों का दबाव घटाने के लिये 50 वर्ष पहले बने एन सी आर (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) बोर्ड ने यदि थोड़ा सा भी ठोस कार्य किया होता तो आज प्रदूषण को लेकर स्थिति इतनी गंभीर न बनी होती एन सी आर निवासियों को पढाई से लेकर इलाज तक हर काम लिये दिल्ली जाना पड़ता है और आवागमन के तमाम सरकारी साधन अपर्याप्त एवं गैरभरोसेमंद है। ऐसे में फ़िर आबादी तथा वहनों का दबाव तो बढना ही है।

मोदी जी पब्लिक है सब जानती है

नरेन्द्र मोदी ने सी.एन.एन के लिये फरीद जकारिया को दिये गये साक्षात्कार में कहा है कि ''भारतीय मुसलमानों की देशभक्ति पर सवाल उठाये नहीं जा सकते। भारतीय मुस्लिम भारत के लिये जीते हैं। और भारत के लिये ही मरते हैं''। मोदी का यह शब्द सुनने में काफ़ी अच्छा लगता है और मोदी के असली चेहरे को नहीं जानने वाला उनका युवा मतदाता उन्हें एक धर्मनिरपेक्ष नेता भी मानने लगता है। इस युवा वर्ग का जिक्र मोदी हमेशा पूंजीपति वर्ग को लुभाने के लिए करते रहे हैं। मोदी 2002 के गुजरात जनसंहार में साम्प्रदायिकता के लगे धब्बे को लगातार छुड़ाने की कोशिश करते रहे हैं। 2014 के चुनाव अभियान हो या लाल किले के प्राचीर से मोदी का साम्प्रदायिकता के खिलाफ़ की गई अपील या सी.एन.एन. को दिया गया साक्षात्कार मोदी को अपने ऊपर लगे धब्बे को छुपाने का असफल प्रयास है।

मोदी के मुख्यमंत्री काल में 2002 के जनसंहार को एक बार भुला भी दिया जाये (जिसके कारण ही उन्हें प्रधानमंत्री की कुर्सी मिली) और मोदी को एक नया मोदी मान कर भी सोचा जाये तो हमारे दिल में कहां तक उतरता है कि वे एक धर्म विशेष के साथ भेद-भाव नहीं करते। चुनावी भाषणों को छोड़ भी दिया जाये (जहां वोट लेने के लिये वादे झूठे ही किये जाते हैं) तो प्रधानमंत्री के रूप में लाल किले के प्राचीर से दिये गये भाषण की 'हम बहुत लड़-कट लिये, मार दिया और किसी को कुछ पता नहीं मिला। जातिवाद, सम्प्रदायवाद देश के विकास में रूकावट है।' प्रधानमंत्री के रूप में मोदी का देश से जातिवाद, साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ 10 साल के लिये स्थगित तय करने की अपील के चार दिन बाद ही उन्हीं की सरकार का गृह मंत्रालय मुजफ़्फ़रनगर दंगे के ज़िम्मेदार भाजपा विधायक को जड पल्स श्रेणी की सुरक्षा मुहैय्या कराने की बात कहती है। क्या इससे सम्प्रदायिक शक्तियों को बढ़ावा नहीं मिलता है?

चुनाव प्रचार के समय भाजपा सांसद गिरिराज सिंह के पाकिस्तान भेजने वाली बात को अगर छोड़ भी दिया जाये तो मोदी सरकार के भाजपा सांसद साक्षी महाराज का वह बयान कि ''मदरसों में आतंकवाद की शिक्षा दी जाती है'' को कैसे भुलाया जा सकता है। सांसद योगी आदित्यनाथ ने, जो कि मोदी सरकार में उत्तर प्रदेश के चुनाव प्रभारी थे चुनाव प्रचार के दौरान कहा कि जहां 10 प्रतिशत से अधिक मुसलमान हैं वहीं सम्प्रदायिक झगड़े हो रहे हैं इसके साथ ही उन्होंने प्रचार के दौरान 'लव जेहाद' के मुद्दे को जोर-शोर से उठाया और कहा कि 'लव जेहाद' के लिए आई.एस.आई. पैसा दे रहा है क्या यह साम्प्रदायिकता नहीं है?

बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने आतंकवाद और बम बनाने में धन जुटाने के लिये 'पिंक रेवल्युशन' (गौ हत्या) की बात कर एक सम्प्रदाय विशेष पर निशाना साधा। इन्दौर की भाजपा विधायक उषा ठाकुर द्वारा यह कहना कि प्रति वर्ष 4.5 लाख हिन्दू लड़कियों का धर्म परिवर्तन किया जाता है और पर्चे-पोस्टर के माध्यम से हिन्दूवादी संगठनों को अगाह करना दशहरे के दौरान गरबा नृत्य में गैर हिन्दू लोगों को नहीं आने दिया जाये। आने वाले लोगों की पहचान पत्र देख करके ही पंडाल के अन्दर प्रवेश दिया जाये। क्या इससे देश में साम्प्रदायिकता का जहर नहीं फैलता है?

उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रो. जवाहरलाल कौल के बयान वापसी को लेकर बजरंग दल व विश्व हिन्दू परिषद (जो आपके सहयोगी हैं) के 35-40 कार्यकर्ताओं (गुण्डे) द्वारा पुलिस की मौजूदगी में उपकुलपति पर हमले किये गये और विश्वविद्यालय में तोड़-फ़ोड़ किया गया। इस घटनाक्रम को बीजेपी शासित प्रदेश की पुलिस मूक दर्शक बन कर देखती रही। प्रो. कौल का मात्र यह 'दोष' था कि उन्होंने कश्मीर में आई विपदा के लिये मकान मालिकों से अनुरोध किया था कि कश्मीरी छात्रों के साथ मकान मालिक कुछ महीनों के लिए किराये में रियायत दें और इस विपदा में सहयोग करते हुए तत्काल किराये देने के लिये बाध्य न करें। अपने स्टाफ़ों से बाढ़ पीड़ितों के लिये राहत सामग्री जुटाने के लिए अपील की। इस तरह का दोष मोदी जी आपने भी कश्मीर जाकर किया लेकिन आपको तो इसके लिये वाह-वाही मिली। यह आपका कैसा शासन है जहां एक ही तरह के काम के लिये एक को दफ़नाने के लिए 'लोग' उतारू हो जाते हैं दूसरो को 'दिलों' में बसाया जाता है।

यह सभी घटनाएं मोदी जी आपके द्वारा लाल किले के प्राचीर से किये गये अपील के बाद हुई हैं लेकिन आपने ऐसी किसी भी घटना पर अपना मुंह खोलना वाजिब नहीं समझा। आप तो इस देश के 'प्रधान सेवक' हैं और जब आप इन सारी घटनाओं पर चुप रहते हैं तो यह कैसे मान लिया जाये कि आप 2002 वाले मोदी नहीं हैं? आप के मौन व्रत से साम्प्रदायिक शक्तियों के द्वारा समाज में साम्प्रदायिक विद्वेष को बढावा देने का मौका नही मिल रहा है? यह कैसे मान लिया जाये कि आप के मन में एक विशेष समुदाय के प्रति नफरत नहीं रह गई है? अगर आप दिल से भी 'सबका साथ, सबका विकास' की बात करें तो आप नहीं कर सकते हैं। आप की पितामह संस्था ने इसलिए आपको 'प्रधान सेवक' बनाया है कि आप एक विशेष समुदाय व विशेष वर्ग की ही सेवा कर सकें। यही कारण है कि आप के मातहत नेता आपके अपीलों का नज़रअंदाज करते हुए जो चाहते हैं वह कहते हैं और आप उसको मौन स्वीकृति के रूप में स्वीकार करते हैं। मोदी जी आपके वायदे, अपील व साक्षात्कार को जनता आत्मसात कर पायेगी? यह पब्लिक है सब जानती है।

सुनील कुमार, दिल्ली